है। इस संसार में मनुष्य मात्र अपने परिवार और उसकी सामग्री आदि के पालनार्थ कर्म करता है। किसी का भी कर्म स्वार्थ अथवा किसी न किसी निजी तृप्ति से पूर्णरूप में मुक्त नहीं है, चाहे वह अपने तक सीमित हो अथवा अधिक व्यापक ही क्यों न हो। संसिद्धि की कसौटी कृष्णभावनाभावित कर्म करना है, कर्मफल को भोगने की इच्छा से प्रेरित कर्म करना नहीं। कृष्णभावनाभावित कर्म सब जीवों का परम कर्तव्य है, क्योंकि स्वरूप से सभी श्रीकृष्ण के भिन्न-अंश हैं। शरीर के विविध अंग-प्रत्यंग सम्पूर्ण शरीर के पोषण के लिए कार्य करते हैं, स्वार्थ के लिए नहीं। इसी भाँति, जो पुरुष स्वार्थ के स्थान पर परब्रह्म की तृप्ति के लिए कर्म करता है, वह पूर्ण संन्यासी और पूर्ण योगी है।

कुछ संन्यासी मिथ्या रूप से अपने को सम्पूर्ण लौकिक कर्तव्यों से मुक्त हुआ मानकर अग्निहोत्र को त्याग देते हैं। परन्तु वास्तव में वे स्वार्थी हैं, क्योंकि उनका लक्ष्य निराकार ब्रह्म से सायुज्य प्राप्त करना है। प्राकृत कामनाओं से ऊपर होने पर भी यह इच्छा स्वार्थप्रेरित ही है। इसी प्रकार सम्पूर्ण प्राकृत क्रियाओं को त्याग कर अर्धमीलित नेत्रों से योगाभ्यास करने वाला भी स्वार्थ तृप्ति से प्रेरित है। कृष्णभावनाभावित भक्त ही एकमात्र ऐसा प्राणी है, जो परमेश्वर की प्रीति के लिए निस्वार्थ भाव से कर्म करता है। अतएव उसमें स्वार्थ कामना की गन्ध तक नहीं रहती। श्रीकृष्ण के सन्तोष में ही वह अपनी सफलता मानता है। इसलिए एकमात्र वह पूर्ण योगी और पूर्ण संन्यासी है। संन्यास के परम आदर्श श्रीगौरसुन्दर चैतन्य महाप्रभु की प्रार्थना है:

न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि ।।

"हे सर्वसमर्थ प्रभो! मुझे धन-सञ्चय की कोई कामना नहीं है और न ही मैं सुन्दर स्त्री अथवा बहुत से अनुयायियों का इच्छुक हूँ। जन्म-जन्मान्तर आपकी कृपामयी अहैतुकी भक्ति की ही मुझे अभिलाषा है।"

2/4

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव।
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन।।२।।

यम्=जिसको; **संन्यासम्**=संन्यास; **इति**=इस प्रकार; **प्राहुः**=कहते हैं; **योगम्**=योग (श्रीभगवान् से युक्त होना); **तम्**=उसे; **विद्धि**=जान; **पाण्डव**=हे पाण्डुपुत्र; **न**=कभी नहीं; **हि**=निःसन्देह; **असंन्यस्त**=त्यागे बिना; **संकल्पः**=स्वार्थ-तृप्ति को; **योगी**=योगी; **भवति**=होता; **कश्चन**=कोई।

अनुवाद

हे अर्जुन! जिसे संन्यास कहते हैं, वही योग अर्थात् परतत्त्व से युक्त होना है क्योंकि इन्द्रियतृप्ति की इच्छा को त्यागे बिना कोई भी योगी नहीं हो सकता।।२।।

तात्पर्य

सच्चे 'संन्यासयोग' अथवा 'भक्तियोग' का तात्पर्य यह है कि जीवात्मा